भारतीय संसद एवं विधान मंडलों के सदस्यों तथा समितियों की विशेषाधिकार, शक्तियॉ तथा उन्मुक्तियॉ

डॉ. प्रियंका चक्रवर्ती
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
षासकीय स्नातक महाविद्यालय नैनपुर
जिला –मण्डला (म0प्र0)

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की यह धारणा है कि कानून की दृष्टि से सभी नागरिक एक समान हैं। विधि शासन सभी के लिए एक समान लागू होती है। ऐसे अधिकार जिससे देश की सर्वोच्च निर्वाचित संस्था व उसके सदस्य अपना कार्य बिना किसी भय अथवा बाधा के स्वतंत्रापूर्वक कर सकें। सदन की स्वतंत्रता, प्राधिकार तथा प्रतिष्ठा देश जनादेश के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आयी है और जो सदन पूरे देश के लिए कार्य करता है उसे संभाले रखना और सुरक्षित बनाए रखना आवश्यक है अन्यथा पूरी संसदीय व्यवस्था चरमरा सकती है। अतः जब इस देश के कानून के अंतर्गत सभी नागरिक समान हैं और किसी संसद सदस्य को अपने दायित्व के निर्वाह करने के मामले में छूट प्राप्त नहीं है और इस पूरी व्यवस्था में संसदीय विशेषाधिकार केवल वहीं लागू होते हैं। जहॉ संसद सदस्यों को वैयक्तिक रूप से और सदन को सामूहिक रूप से स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की आवश्यकता हो। इरस्किन के शब्दों में संसद और इसके सदस्यों को प्राप्त शक्तियॉ और विशेषाधिकार **''कार्यों को पूरा करने के आवश्यक साधन''** है।

संसद के प्रत्येक सदन के पास कुछ शक्तियॉ और विशेषाधिकार हैं जिससे कि वे स्वतंत्र और प्रभावी रूप से कार्य कर सकें और प्रतिष्ठा, प्राधिकारों और अपने सदस्यों की रक्षा कर सकें। सदन अपने सदस्यों की अबाधित सेवाओं के उपयोग के बिना अपना कार्य नहीं चला सकता। इसलिए सदस्यों के व्यक्तिगत रूप से भी संसदीय विशेषाधिकार होते है। इसके अतिरिक्त ये अधिकार तथा छूटें बिना किसी बाधा के संसदीय कर्तव्यों को निभाने से संबंधित हैं तथा मतदाताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए भी हैं। कोई मतदाता जो किसी सदस्य को संसद में भेजता है उसका सदस्य से यह अपेक्षा रखना उचित ही है कि वह भयमुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करे। संसदीय विशेषाधिकारों की प्रकृति और सीमा का सच्चा मूल्यांकन ही इसकी आवश्यकता को स्पष्ट करता है और साथ ही ऐसी किसी धारणा को भी निरस्त करता है कि इससे किसी सामंत वर्ग या एक अलग वर्ग या किसी ऐसे वर्ग का सृजन होगा जो अपने आपको सर्वोत्कृष्ट या आम नागरिकों से अन्यथा मानता हो।

संसद के किसी भी सदन द्वारा या उसके प्राधिकार से प्रकाशित किसी रिपोर्ट/प्रतिवेदन,दस्तावेज,टीप/नोट या कार्यवाही के संबंध में न्यायालय की कोई प्रक्रिया लागू नहीं होती। भारत में विशेषाधिकार की व्यवस्था ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स की परंपरानुसार की गई है। संसदीय विशेषाधिकार न्यायालय की अवमानना संबंधी शक्तियों के सदृश है। यह अवमानना संबंधी शक्ति भी संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदत्त बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार से ही मिली है जो संवैधानिक अपवाद के सदृश है। हालांकि इसका तात्पर्य स्वच्छंद रूप से बोलने के अधिकार से नहीं है। चाहे यह न्यायालय के अधिकारों की अवमानना का प्रश्न हो अथवा संसदीय विशेषाधिकार का प्रश्न, स्वच्छ आलोचना पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस संबंध में न्यायाधीश फ्रैंकफर्ट का मानना है कि न्यायालय की आलोचना किया जाना एक महत्वपूर्ण जरूरत है किन्तु ठीक वैसा ही महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने कर्त्तव्य का पालन करने दिया जाए। किसी को भी इस व्यवस्था को ठप्प करने का अधिकार नहीं है तथा इस बात की महति आवश्यकता है कि इस प्रक्रिया को क्षति पहुंचाने के उद्देश्य से किए जाने वाले निराधार आक्षेपों का विरोध किया जाए। कई लोग यह तर्क देते है कि भारत में संसद अपने ही मामले में अभियोजक और न्यायाधीश दोनों बन जाती है, न्यायिक अधिकार न्यायालयों को सौंप देनी चाहिए। मेरा (शोध कर्ता का) यह तर्क है कि यदि संसद इस देश की सर्वोच्च संस्था है, जिस पर केवल संविधान का ही नियंत्रण है, तो अवमानना हुई है या नहीं इसके निर्णय का कार्य किसी अन्य संस्था पर कैसे छोड़ा जा सकता है? इस बात के पीछे यह भी तर्क है कि यदि हमारी राजनैतिक प्रणाली को ठीक प्रकार कार्य करना है तो संसदीय सर्वोच्चता को कायम रखना होगा। सांसदों को संस्था के प्रति अपने कर्त्तव्य और जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व के रहते लोगों के अधिकारों की संरक्षा करते हुए संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का अनुरक्षण करना होगा।

भारत की संसदीय प्रणाली बहुत कुछ ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। इसी वजह से भारत के संविधान में संसद और विधानमंडलों के सदस्यों को ब्रिटेन की भांति विशेषाधिकार प्रदान किए गए है। हालांकि ब्रिटेन में संसद को ऐसे विशेषाधिकार देने के पीछे वहां के राजा और जनप्रतिनिधियों के बीच जबर्दस्त टकराव की स्थिति थी, जिसमें सांसदों का निर्बाध काम करना ही संभव नहीं था, इसलिए उन्हें विशेषाधिकार से सज्जित किया गया पर भारत में ऐसा कोई द्वंद नहीं था, फिर भी यहां के जनप्रतिनिधियों को विशेषाधिकार दिए गए। संसद के जनप्रतिनिधि कोई राजा–महाराजा नहीं होते, विशेषाधिकार की ढाल तो मात्र इसलिए है कि उनके कर्तव्य निर्वहन में यदि कोई बाधा उत्पन्न करता है, तो उसे दंडित किया जा सके। अगस्त 1950 में अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में कहा गया था कि ''संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य संसद की स्वतंत्रता, प्राधिकार और गरिमा की रक्षा करना है। संसद तथा राज्य विधानमंडलों के सदस्यों को जो कार्य सौपें गये हैं, उनके समुचित रूप से निर्वहन के लिए विशेषाधिकार जरूरी है ताकि वे बिना रोक–टोक के अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें। जब कोई व्यक्ति या कोई प्राधिकार व्यक्तिगत रूप से सदस्यों या सामूहिक रूप से सभा के किसी विशेषाधिकार, अधिकार या उन्मुक्ति की अवहेलना करता है या उस पर कुठाराघात करता है तो उस अपराध को विशेषाधिकार भंग की संज्ञा दी जाती है और उसके लिए सभा दण्ड दे सकती है।''[1] संविधान के अनुच्छेद–105 में संसद और अनुच्छेद–194 में विधानमंडलों और उनके सदस्यों को विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्रदान की गई हैं।

प्रत्येक सदन स्वयं अपने विशेषाधिकारों का रक्षक है, न केवल वह किसी ऐसे विषय का एकमात्र निर्णायक हे जो किसी प्रकार विशेषाधिकार का भंग करता हो बल्कि यदि वह उचित समझे तो किसी भी ऐसे व्यक्ति को कारावास का दण्ड दे सकता है, या उसकी भर्त्सना कर सकता है जिसे वह अवमानना का दोषी समझता हों। मूल संविधान में यह उल्लेख था कि ये विशेषाधिकार ऐसे होंगे, जो संसद समय–समय पर विधि द्वारा परिभाषित करेगी और जब तक परिभाषित नहीं किए जाते, तब तक ऐसे होंगे जो 26 जनवरी 1950 को ब्रिटेन की पार्लियामेंट और उसके सदस्यों के थे। इस प्रकार भारतीय संसदीय प्रणाली के तहत ब्रिटेन में वेस्टमिंस्टर प्रणाली के प्रादुर्भाव व संचालन के सदियों पुराने इतिहास की सम्पूर्ण प्रथाओं, परम्पराओं, दूरदर्शिता एवं अनुभवों को अपनाया गया है। संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा हाउस ऑफ कामंस के उल्लेख को हटा दिया गया। उसके स्थान पर यह रखा गया कि ये जब तक परिभाषित नहीं होंगे वैसे ही होंगे जैसे 20 जून, 1979 तक भारत की संसद और विधानमंडलों के रहे है। इस प्रावधान को पूरी तरह स्वीकार करने के बावजूद संविधान निर्माता संसद में भाषण की स्वतंत्रता के बारे में सर्वाधिक सचेत थे तथा उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि इस संविधान के उपबंध और संसद की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों और स्थायी ओदशों के अधीन रहते हुए, संसद तथा विधान मंडलों में वाक् स्वतंत्रता होगा। संसद या राज्य विधान मंडल में अथवा उसकी किसी समिति में उसके विरूद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी। किसी व्यक्ति के विरूद्ध संसद या विधान मंडल के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी तथा यह कि उन व्यक्तियों के संबंध में भी न्यायिक कार्यवाही संबंधी उन्मुक्तियॉ लागू होगी जिन व्यक्तियों को संविधान के तहत संसद या राज्य विधान मंडल के किसी सदन या उसकी किसी समिति में बोलने का और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार है।

यदि संसद या विधान मण्डल का कोई सदस्य अपने कार्यों से संसद या विधान मण्डल की गरिमा का उल्लंघन करता है या सदन के विशेषाधिकारों का उल्लंघन करता है तो संसद या विधान मण्डल उस सदस्य को सदन से निष्कासित कर सकती है। वर्ष 2010 तक लोकसभा ने अब तक इस अधिकार का केवल तीन बार प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ 1954 में एच.जी. बुद्रल जिन पर रिश्वत लेकर लोकसभा में प्रश्न पूछने का आरोप था, के निष्कासन का प्रस्ताव तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के द्वारा पेश किया गया था लेकिन निष्कासन की कार्यवाही पूरा होने के पहले ही उन्होंने लोकसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।[3] लोकसभा ने दूसरी बार इस अधिकार का प्रयोग श्रीमती इंदिरा गांधी के विरूद्ध किया था और उन्हें लोकसभा की सदस्यता से इसलिए निष्कासित कर दिया गया था कि उन्होंने मारूति उद्योग के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने के कार्य में व्यवधान उपस्थित किया था। लोकसभा को सदस्य के निष्कासन को रद्द करने का अधिकार भी है। 1980 में लोकसभा ने श्रीमती इंदिरा गांधी जिन्हें 1978 में निष्कासित किया गया था, का निष्कासन रद्द किया था। तीसरा मामला हाल ही में हुए स्टिंग आपरेशन में यह स्पष्ट है कि सदस्यों ने सवाल पूछने के लिए पैसे लिए, इसलिए उन्होंने सदन का अपमान किया जिसके चलते संसद ने दस सदस्यों को निष्कासित कर दिया।

तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव के साथ सभी अपीलकर्ताओं का मुख्य तर्क यह था कि संविधान के अनुच्छेद 105 के तहत संसद सदस्यों के खिलाफ बगैर अनुमति के किसी भी कोर्ट में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, साथ ही उन पर भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट 1988 के तहत भी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने बहुमत से यह फैसला दिया कि कथित तौर पर रिश्वत लेने वाले सांसदों पर संविधान के अनुच्छेद 105 (2) के तहत न्यायिक कार्रवाई से छूट मिली हुई है। अविश्वास प्रस्ताव के तहत वोटिंग करने या भाषण देने के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है।

हालांकि वैसे संसद सदस्यों जिन्होंने पैसे लेकर मतदान के समय अनुपस्थित रहने का फैसला किया है को यह छूट नहीं मिलती है। जहॉ तक रिश्वत देने वालों का सवाल है, सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था दी कि उनके खिलाफ सांसदों को पैसे देकर मतदान से अनुपस्थित रखवाने का मामला जरूर चलना चाहिए, वैसे संसद रिश्वत देने और लेने वालों के खिलाफ विशेषाधिकार हनन और अवमानना का मामला चला सकती है।

सदन द्वारा किया जाने वाला हस्तक्षेप कैसा और कितना होगा दोनों के संबंध में स्पष्ट बाधाऍ और सीमाऍ है। अमरीकी उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश वारेन बर्गर ने उस समय न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता की वकालत की जब उन्होंने यह घोषणा की कि किसी भी अभिकल्पनीय व्याख्या के अनुसार रिश्वत लेना किसी विधायक की भूमिका का आंशिक अथवा आकस्मिक हिस्सा नहीं होता है। अन्य प्रबल वक्तव्य लार्ड सालमन द्वारा दिया गया जिन्होंने हाउस ऑफ लार्ड्स में यह कहा कि यह सदन में वाक् स्वतंत्रता के अधिकार की सुविधा प्रदान करता है, यह भ्रष्टाचार का अधिकार नहीं प्रदान करता।

सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि संविधान का अनुच्छेद 105(1) संसद मे बोलने का अधिकार देता है, जो यह बताता है कि यह स्वतंत्रता अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रता से अलग है और वहॉ लागू बंदिशों से मुक्त है। यह व्यवस्था इस तथ्य को स्थापित करती है कि संसद सदस्यों को सभी तरह की बंदिशों से मुक्त रखा गया है, जहां तक बहस में अपने क्षेत्र को प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व देने का मामला है। कोई भी सदस्य संसद में दिए गए अपने वक्तव्य के लिए कानून की किसी अदालत या उसी तरह की ट्रिब्यूनल में जवाबदेह नहीं है। इसी तरह एक वोट को भी बोलने की स्वतंत्रता का ही विस्तार माना गया है, और उसे भी बोले गए शब्दों की तरह ही सुरक्षा प्राप्त है। यह सुरक्षा किसी भी न्यायिक प्रक्रिया से पूरी छूट देती है जिसका संबंध संसद में दिए गए मत या भाषण से है। जस्टिस अग्रवाल और जस्टिस आनंद ने अपने फैसले में आगे यह भी कहा कि पिछले 100 सालों से बनाए जा सकते हैं और ब्रिटेन के अपवाद करके छोड़ दें तो राष्ट्रमंडल के अधिकतर देश विधायिका के सदस्यों की रिश्वतखोरी को एक आपराधिक मामला ही मानते हैं इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि भारत में विधयिका को कानून से यह छूट क्यों मिलनी चाहिए? नरसिंह राव के मामले में दूसरा मसला जो सुप्रीम कोर्ट के सामने आया वह यह था कि क्या संसद सदस्य सरकारी कर्मचारी हैं? सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी के संविधान के प्रवधानों और जन–प्रतिनिधित्व कानून 1951 के तहत यह माना गया है कि संसद की सदस्यता तब तक कार्यालयीय है, जब तक इसकी प्रकृति सार्वजनिक है और इस तरह के कार्यालय की वजह से ही कोई सदस्य सार्वजनिक प्रकृति के कार्यों को करने के लिए जवाबदेह और अधिकारी है, इसीलिए सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि भ्रष्टाचार निरोधक कानून ,1988 की प्रक्रिया के तहत संसद का कोई भी सदस्य एक सरकारी कर्मचारी नहीं है।

स्टिंग आपरेशन में 11 सदस्यों की सदस्यता से निष्कासन संबंधी मामले की सुनवाई में सुप्रीम कोर्ट ने उन 11 सांसदों की सदस्यता रद्द किये जाने के फैसले को ही ठीक ठहराया। सांसदों की याचिका को ठुकराते हुए कोर्ट ने व्यवस्था दी कि संसद के दोनों सदनों की व्यवस्थागत प्रक्रिया किसी भी अवैधानिकता, अतार्किकता, असंवैधानिकता या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करती है। मुख्य न्यायाधीश सब्बरवाल की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय खंडपीठ ने कहा कि संसद अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर न केवल सदन के अंदर की घटनाओं पर कार्रवाई कर सकती है, बल्कि वह उन सभी घटनाओं पर फैसला ले सकती है, जो किसी भी तरह संसद की गरिमा को ठेस पहुंचाती हैं। कोर्ट ने यह भी बताया कि दानों सदनों की सर्वदलीय समिति ने सभी सांसदों को बुलाकर उनकी राय इस मसले पर ली थी। न्यायमूर्ति सब्बरवाल ने अपने मुख्य फैसले में कहा कि अनुच्छेद 105 के तहत संसद की शक्तियों और विशेषाधिकार में ही सदस्यों के निष्कासन का अधिकार भी शामिल है। यह फैसला एक परंपरा स्थापित की है, जिसे हरेक मामले में दोहराए जाने की जरूरत है। ऐसे किसी भी मामले में जहां सदस्य किसी तरह के अनैतिक व्यवहार में लिप्त हैं और उनका आचरण सदन की गरिमा को गिराता है। सभी राजनैतिक दलों को अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर इस संदर्भ में एक स्तर पर व्यवहार करने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति लोकसभा के विशेषाधिकारों को उल्लंघन करता है, उसे लोकसभा के द्वारा जेल भेजा जा सकता है। इस अधिकार का प्रयोग सबसे पहले 1977 में किया गया था, जब इन्द्रदेव सिंह को लोकसभा में पर्चे फेंकने के कारण तिहाड़ जेल भेजा गया था। जब श्रीमती इंदिरा गांधी को 1978 में लोकसभा की सदस्यता से निष्कासित किया गया था, तब उन्हें भी संसद के अधिवेशन, जिसमें उन्हें निष्कासित किया गया था तक के लिए जेल भेज दिया गया था।

1998 का सुप्रीम कोर्ट का वह फैसला खराब फैसलों में से एक है। सुप्रीम कोर्ट ने झारखंड मुक्ति मोर्चा सांसद रिश्वत कांड[9] में संसद के विशेषाधिकार की गलत व्याख्या की। कोर्ट ने घूस लेकर संसद में मतदान करने वाले सांसदों पर मुकदमा चलाने से इंकार कर दिया था, जबकि रिश्वत देने वालों के खिलाफ भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के तहत मुकदमा चलाने का आदेश दिया था। मेरे विचार से सुप्रीम कोर्ट के सामने इस तरह का कोई अन्य मामला अगर फिर आएगा तो वह शायद 1998 के उस फैसले को पलट दे। किसी आपराधिक कृत्य को संसदीय विशेषाधिकार प्रोटैक्ट नहीं का करेगा। वस्तुतः प्रभुसत्ता का मोह के पीछे दो तर्क स्पष्ट दिखाई देता है, संसद और विधानमंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकारों में

सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वाक स्वतंत्रता। जिसके बारे में कोई अदालती कार्रवाई नहीं हो सकती, पर यह भी सदन के नियमों द्वारा नियंत्रित होता है। दूसरा अहम अधिकार है विशेषाधिकार के मामलों में सदन का सर्वोच्च प्राधिकार। इसके तहत सदन अपने सदस्यों और बाहरी व्यक्तियों को दंडित कर सकता है। आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायाधीश डेनमॅन ने मिडलसेक्स के शेरिफ के मामले में टिप्पणी की–**''प्रतिनिधि निकायों को उनके द्वारा अपने लिए की गयी व्यवस्था के अनुसार ही अपने प्राधिकार का औचित्य सिद्ध करना चाहिए और वह व्यवस्था अवमानना के लिए दण्ड की प्रक्रिया में निहित है। न्यायालय तथा सभाओं को यदि ऐसी शक्तियॉ नहीं दी जाती हैं तो उनका लगातार अपमान होगा तथा बाधायें डाली जायेंगी''।**

गलत काम पर विशेषाधिकार का पर्दा नहीं डाला जा सकता। संविधान निर्माताओं ने सांसदों को ये विशेषाधिकार इसलिए दिए थे ताकि जनता के जनप्रतिनिधि बिना किसी रोक–टोक के किसी भी विषय पर सदन में निडर होकर चर्चा कर सके, इसलिए सदन के भीतर होने वाली बहस को किसी अदालत में भी चुनौती नहीं दी जा सकती। यह प्रावधान इसी आशय से बनाया गया था। देश की संसद को कार्यपालिका और न्यायपालिका के तुलना में सुप्रीम माना गया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि संसद के अंदर कोई गलत काम किया जाए तो उस पर भी विशेषाधिकार का हवाला देकर पर्दा डाल दिया जाएगा। उस पर विशेषाधिकार हनन का मामला बन सकता है। लेकिन इसके लिए एक तय प्रक्रिया है। उसके लिए पहले विशेषाधिकार हनन का नोटिस दिया जाता है, इस पर सदन में चर्चा होती है और उसके बाद कार्रवाई की नौबत आती है। संसद में विशेषाधिकार समिति भी होती है, संसद और विधानमंडल के अध्यक्ष चाहें तो मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप सकते है। समिति की सिफारिश पर विशेषाधिकार का हनन करने वाले सांसद या किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई हो सकती है। आमतौर पर सामान्य लहजे में विशेषाधिकार का उल्लंघन और अपमान को समान रूप में प्रयोग किया जाता है लेकिन दोनों में काफी अंतर है। विधायिका के प्रत्येक सदन का अपना अलग विशेषाधिकार होता है। इस विशेषाधिकार से किसी भी प्रकार की छेड़छाड़, विशेषाधिकार का उल्लंघन कहलाता है और यह सदन के अपमान के कारण दंडनीय है, जबकि सदन के अपमान का दूसरा ही अर्थ होता है। विशेषाधिकार का उल्लंघन तो स्पष्ट है लेकिन सदन का अपमान पूरी तरह से परिभाषित नहीं है और यह सदन द्वारा ही तय होता है। साधारणतया परिभाषित रूप में किसी सदस्य का व्यवहार उस समय दुर्व्यवहार की श्रेणी में आता है जब वह कोई ऐसा कार्य करता है जो उसको संसद सदस्य होने की गरिमा और खुद सदन की मर्यादा के खिलाफ होता है।

सदन के संवैधानिक प्राधिकारी, लोकसभा, राज्यसभा या राज्यों की विधायिका द्वारा विशेषाधिकार का उल्लंघन करने पर या सदन की गरिमा को ठेस पहुंचाने पर सदस्यों को दंडित करने का अधिकार भी विधायिका को ही है न कि न्यायपालिका को। दंड का स्पष्टीकरण नहीं हुआ है लेकिन इसकी कोई सीमा भी नहीं है।विधायी सदनों को ये अधिकार है कि वे विशेषाधिकार का हनन करने पर या इसके अपमान पर किसी सदस्य को जेल भेज सकें। संविधान यह स्पष्ट नहीं करता कि उनकी शक्तियॉ कहां तक सीमित है। केवल यह कहा जा सकता है कि इस कार्य पर किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं खड़ा किया जा सकता।

संसदीय विशेषाधिकार का एक नकारात्मक पहलू स्पष्ट देखने को मिलती है जो उचित नहीं लगता। जिस तरह एक अपराधी को न्यायालय दोषी पाये जाने पर सजा आफ्ता देती ही है उसे माफ कर कानून का गला घोटने का प्रयास नहीं किया जाता। उसी तरह अपने विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों को सुरक्षित रखने के लिए संसद के पास विशेषाधिकारों के भंग अथवा सभी की अवमानना की स्थिति में किसी सदस्य अथवा अन्य व्यक्ति को दंड दिया जाना चाहिए न कि माफी मांगे जाने पर माफ कर दिया जाए ताकि सभा की गरिमा के विरूद्ध पुनरावृति न हो सके। अवमानना करने वाले को भर्त्सना करके या ताड़ना करके मुक्त कर देने से संसद में दिन प्रतिदिन विशेषाधिकार हनन के मामले में अभिवृद्धि हो रही है। मार्च, 2010 के संसद के बजट सत्र में सैनिकों के लिए वन रैंक वन पेंशन के मुद्दे पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के सदन में गलत उत्तर देने के मामले में बी.जे.पी. के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी ने पी.एम. पर झूठा दावा करके संसद की गरिमा को ठेस पहुंचाने का आरोप लगाया। उन्होंने यह आरोप लगाया कि पी.एम. ने लोकसभा में कहा था कि सशस्त्र सैनिकों के लिए घोषित बढ़ी हुई पेंशन दे दी गई है जबकि किसी भी अधिकारी या जवान को ऐसा आदेश नहीं मिला है, आडवाणी ने कहा कि यह संसदीय विशेषाधिकार का मामला है। कोई भी मामला विशेषाधिकार हनन का मामला नहीं होता, यदि सदन में मंत्रिपरिषद के सदस्यों द्वारा दिए गए उत्तर में कोई बात अस्पष्ट है, अधूरा जानकारी है या असत्य है तो वांछित सदस्य इस मामले को प्रश्न एवं संदर्भ समिति के समक्ष जॉच के लिए रख सकता है न कि विशेषाधिकार हननका मामला है। यदि सदन के कोई भी सदस्य चाहे वह मंत्रीपरिषद के सदस्य हो सदन में प्रस्तुत करने के पूर्व कोई ऐसी बात नहीं कह सकेगा जो सदन की गरिमा व प्रतिष्ठा को हनन करती हो। सदन में प्रस्तुत करने वाली समस्त दस्तावेज गोपनीय होती है, सदन में प्रस्तुत होने के पश्चात् सदन चाहे तो जनहित में प्रचारित–प्रसारित कर सकती है और इसे गोपनीय भी बना सकती है। गोपनीय स्थिति में कोई भी प्रकाशन विशेषाधिकार हनन के तहत् माना जायेगा।

आज ब्रिटेन में विशेषाधिकार का सदस्यों द्वारा उनका उपयोग ही नहीं होता, पर भारत में स्थिति यह है कि संसद और विधानमंडलों में प्रायः तुच्छ मामलों को लेकर भी विशेषाधिकार हनन की सूचनाएँ दी जाती है। ज्यादातर मामले पत्रकारों, समाचार पत्रों या पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध उठाए जाते है। इसके पीछे जनप्रतिनिधियों की मानसिकता कुछ ऐसी रही है कि विशेषाधिकार से लैस वे अतिविशिष्ट व्यक्ति हैं। उनकी आलोचना का मीडिया को भी हक नहीं है, जबकि लोकतंत्र में जनता ही सर्वोच्च है।

संसदीय विशेषाधिकार का संहिताकरण

संविधान संसद और राज्य विधान मंडलों को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे कानून बनाकर अपनी शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को परिभाषित करें। तथापि इन्हें संहिताबद्ध नहीं किया गया है। यह इसलिए कि संसद द्वारा विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का कोई कानून नहीं बनाया गया, जबकि ऐसी संहिता नहीं होने से अनावश्यक रूप से कई मामले उठते रहते है। अनेक बार इस विषय पर अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलनों में भी चर्चा हुई, सभी का निर्णय यही हुआ है कि विशेषाधिकार संहिता नहीं बनाई जाए। यदि एक बार ऐसा कानून बन जाए, तो फिर न्यायपालिका को हस्तक्षेप का अधिकार मिल जाएगा और संसद तथा विधानमंडलों की सर्वोच्चता नहीं रहेंगी। हालांकि प्रेस कमीशन द्वारा कई बार यह सिफारिश की गई कि प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा हेतु विशेषाधिकार संहिता बनाई जाए, पर संसद और विधानमंडलों द्वारा उसे इसलिए स्वीकार नहीं किया गया कि अधिकार का निर्वहन विधायिका के हाथ से निकलकर न्यायपालिका के पास चला जाएगा।

लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष मावलंकर[12] ने विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के प्रश्न पर सितम्बर, 1949 को कहा था कि इस समय यह अधिक अच्छा होगा कि अभी विशिष्ट विशेषाधिकारों की परिभाषा न करें बल्कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स की नजीरों पर ही भरोसा करें। इस समय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने में यह हानि होगी कि जब भी कोई नई स्थिति उत्पन्न होगी। हम अपने को उसके अनुसार ढाल नहीं पाएँगे और सदस्यों को अधिक विशेषाधिकार नहीं दे सकेंगे। आज हमें इस बात का तो आश्वासन है कि हमारे विशेषाधिकार वहीं हैं जो हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों के हैं।

श्री मावलंकर की राय अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारी सम्मेलन ने स्वीकार कर ली है कि विशेषाधिकार क्या है? और उसके सम्बंध में विचार एकत्रित करने के लिए प्रारंभिक सर्वेक्षण किया जाए, जिससे कि उन विषयों की कल्पना की जा सके जिनके सम्बंध में कानून बनाने की जरूरत है। इसके लिए चार अध्यक्षों की एक समिति बनाई गई जिसने कहा समिति का विचार है कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अनुच्छेद 194 (3) के अंतर्गत कोई विधानमंडल कुछ पहलुओं के संबंध में अपने सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए कानून बना दे और बाकी विषयों में उनके विशेषाधिकार, शक्तियॉ तथा उन्मुक्तियॉ वही रहने दी जाएँ जो कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत कोई विधान मण्डल ऐसा कानून बनाने को सक्षम हो तभी विधान मण्डल को अपने सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए ऐसा कानून बनाना चाहिए अन्यथा इस समय ऐसा कानून नहीं बनाना चाहिए। समिति ने यह प्रश्न अध्यक्षों के सम्मेलन पर छोड़ दिया हैं।

अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन,1950 में समिति की राय पर विचार किया गया और मतभेद होने के कारण सम्मेलन ने विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के विरूद्ध राय दी। यही कारण है कि किसी भी विधान मंडल ने विशेषाधिकारों की परिभाषा करके उन्हें कानूनी रूप देने का प्रयास नहीं किया।

लार्ड सैल्डन ने मजाक में यह कहा था कि संसद सदस्य संसार के किसी भी राजकुमार की तरह महान हैं तथा किसी को भी यह जानने की जरूरत नहीं है कि उनके विशेषाधिकार कितना हैं और जो भी उनकी इच्छा के विरूद्ध होता हैं वही विशेषाधिकार भंग है। सैल्डन का मजाक आज वर्तमान समय का सच है। विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने से अनेक कठिनाईयॉ ही पैदा होंगी। संहिताबद्ध करना संसद द्वारा बनाया जाने वाला एक कानून होगा जिसके कारण इस पर संविधान का अनुच्छेद 18 लागू होगा और संहिताबद्ध करने से विशेषाधिकारों का कानून नागरिकों के मूल अधिकार तथा न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ जाएगा जिससे विशेषाधिकारों को प्रदान किए जाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्ला ने कहा था कि संहिताबद्ध कानून से उन व्यक्तियों को अधिक लाभ होगा जो संसद इसके सदस्यों तथा समितियों की आलोचना करते रहते हैं तथा न्यायालय को बार–बार हस्तक्षेप करने के लिए कहा जाएगा। एक लिखित कानून संसद और न्यायालयों को अपनी उस गरिमा को बनाए रखने में कठिनाई पैदा करेगा जो कि संसद की होनी चाहिए तथा जिसे न्यायालय हमेशा बनाए रखेंगे जैसाकि वे अपने विशेषाधिकारों के मामले में करते आए है।

केन्या[15] ने अपनी नेशनल एसेम्बली पावर्स एण्ड प्रिविलिजिज एक्ट 1952 द्वारा विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया और साथ ही दांडिक अधिकार न्यायालयों को सौंप दिए। केन्या के संसदविदों का यह मानना है कि विशेषाधिकारों के अनुपालन और सम्पूर्ण संसदीय प्रणाली के संरक्षण के लिए दांडिक शक्तियां नितान्त आवश्यक है। आस्ट्रेलिया में प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया है कि आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायाधीश के निर्णय पर महाभियोग नहीं चलाया जा सकता।

आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायाधीश डेनमॅन ने मिडलसेक्स के शेरिफ के मामले में टिप्पणी की ''सांसदों को संस्था के प्रति अपने कर्त्तव्य और जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व के रहते लोगों के अधिकारों की संरक्षा करते हुए संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का अनुरक्षण करना होगा।''

प्रेस और विशेषाधिकारः विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की व्याख्या संविधान में कर दी गई है तथा इन तीन स्तंभों से जन–जीवन को जोड़ने का दायित्व प्रेस का होता है जिसका माध्यम है समाचार पत्र और इलेक्ट्रानिक मीडिया। ब्रिटेन में प्रेस संसद का आइना होती है। ब्रिटेन की संसद की कार्यवाही को प्रकाशित और प्रसारित करने का प्रेस को पूरा अधिकार है। ब्रिटिश संसद लार्ड मेकाले के इस कथन का अनुपालन करती है कि संसद के लिये पूरा राष्ट्र दर्शक है, वहॉ संसद की कार्यवाही के किसी भी अंश को प्रकाशन से प्रतिबन्धित करने का अधिकार नहीं है। संविधान के प्रावधान के अलावा संसद के कार्यसंचालन नियमावली में यदि अध्यक्ष की आसंदी से कार्यवाही के किसी अंश को विलोपित करने की घोषणा कर दी जाती है तो उसका प्रकाशन या प्रसारण नहीं किया जा सकता। इस नियम की अवहेलना करने वाला सदन की अवमानना का दोषी होता है और उसे दण्ड भी दिया जा सकता है। इसलिए संसद या विधानमंडलों की कार्यवाही की रिपोर्टिंग करते समय पत्रकारों को अत्यंत सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि एक गलत रिपोर्टिंग पर विशेषाधिकार भंग की कार्यवाही उन पर हो सकती है।

यदि प्रेस ने यथावत प्रकाशन करने के बजाय इसे तोड़–मरोड़कर छाया या कार्यवाही को लेकर सदन, उसके सदस्य अथवा अध्यक्ष के बारे में अपमानजनक या मजाकिया टिप्पणी कर दी तो सम्बद्ध समाचार–पत्र विशेषाधिकार हनन के दायरे में आ जाएगा। नागरिकों को यह जानने का पूरा अधिकार है कि उनके जनप्रतिनिधि सदन में किस तरह का आचरण करते हैं उनकी अभिव्यक्तियों को यदि आसंदी ने कार्यवाही से विलोपित करने का आदेश दे दिया तो उन अभिव्यक्तियों को प्रकाशित नहीं किया जा सकता। यदि किसी ने विलोपित शब्दों को प्रकाशित कर दिया तो वह अवमानना का दोषी होगा तथा सदन उनके विरूद्ध कोई भी कार्यवाही कर सकता है।

1961 में मूल अधिकारों पर विशेषाधिकार को तरजीह दी गई है। ब्लिट्ज साप्ताहिक के संपादक आर.के. करंजिया को लोकसभा में प्रताड़ित करने की घटना से मिलता है। संपादक ने लोकसभा में किये गये आचार्य जे.बी. कृपलानी के भाषण को अपमानजनक ढंग से छापा था। मामला विशेषाधिकार समिति में गया जिसने सुनवाई के बाद साप्ताहिक पत्र के संपादक श्री करंजिया को लोकसभा में बुलाकर प्रताड़ित करने की सजा सुनाई। संसदीय इतिहास में प्रेस के विरूद्ध कार्रवाही की यह भारत में संभवतः पहली घटना थी।

इसके पूर्व 1953 में टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि का विधान सभा प्रवेश पत्र महज इसलिए वापस ले लिया गया था क्योंकि उनसे प्रश्नोत्तर काल में पूछे गए प्रश्नों को ''निकृष्ट और घटिया'' लिख दिया था। इसी तरह 10 मार्च, 1983 के अंक में तेलुगू दैनिक इनाडु ने आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद में एक दिन पूर्व हुए हुल्लड़ का समाचार श्रेष्ठजनों का तमाशा शीर्षक से छापा जिसे विशेषाधिकार भंग का प्रकरण मानकर संपादक रामोजीराव को सदन में प्रताड़ित करने की सिफारिश की गई। यह मामला मूल अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के साथ–साथ न्यायपालिका और विधायिका के टकराव का कारण भी बना। विशेषाधिकारों के संहिताबद्ध नहीं होने की वजह से यह स्थिति उत्पन्न हुई इस टकराव में संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया जिसके सम्बंध में व्याख्या के निर्णय का अधिकार न्यायपालिका को दिया गया है।

सितम्बर, 1963 में इंडियन एक्सप्रेस के रिपोर्टर ने डॉ. राममनोहर लोहिया के कथन की अपने तरीके से व्याख्या कर दी। डॉ. लोहिया ने कहा था प्रधानमंत्री को सदन में अंग्रेजी नहीं बोलना चाहिए। रिपोर्टर ने इसकी व्याख्या यह कर दी कि प्रधानमंत्री को हिन्दी के अलावा अन्य भाषा में बोलने का अधिकार नहीं है। अखबार के संपादक को इसके लिये खेद व्यक्त करना पड़ा।

स्वर्गीय फिरोज गांधी[19] ने संसद में 23 मार्च 1956 को कहा था कि हमारी संसदीय स्वरूप की शासन प्रणाली व प्रजातंत्र की सफलता के लिए ताकि जनता की इच्छा सर्वोपरि रहे और उसके अनुरूप कार्य हो सकें। यह आवश्यक है कि हमारी जनता को यह मालूम होता रहे कि इस सदन में क्या हो रहा है। यह मेरा या आपका सदन नहीं है, यह जनता का है। हम 500 लोग हमारे 37 करोड़ लोगों की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम यहॉ उनकी ओर से बोलते व राज करते हैं। इन लोगों को यह जानने का पूरा अधिकार है कि उनके द्वारा चुने प्रतिनिधि क्या कहते व करते हैं। इसके रास्ते में जो भी आये उसे हटा दिया जाना चाहिए। फिरोज गांधी ने प्रेस की स्वतंत्रता के लिए काफी प्रयास किये, उनके नाम से एक कानून भी बना लेकिन मर्यादा बाहर जाकर रिपोर्टिंग के साथ वे भी नहीं रहे।

अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारी सम्मेलनों में पीठासीन अधिकारियों ने एक राय से यह मानने के लिए तैयार हो गये है कि संसद या विधानमंडलों के सदस्य सदन में जो भाषण देते है, उसके लिए उनके विरूद्ध मानहानि या अन्य कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। पर अगर कोई समाचार पत्र सदन में दिया गया मानहारिकारक भाषण छापे तो क्या उसे भी कानूनी कार्यवाही से यह संरक्षण इसलिए मिलना चाहिए कि उसने केवल संसद या विधानमंडल की कार्यवाही का समाचार दिया है, अपनी ओर से कुछ नहीं कहा है? इस पर संविधान परिषद में काफी बहस हुई थी। ऐसा संरक्षण देने या न देने के पक्ष में कई बातें कहीं गई। जो लोक संरक्षण देने के पक्ष में थे उनका कहना था कि अध्यक्ष ने अगर किसी सदस्य को भाषण देने से रोका नहीं है और भाषण सदन की कार्यवाही की अधिकृत रिपोर्ट में जा रहा हो तो पत्रों को भी उसे प्रकाशित करने की छूट होनी चाहिए। इस संरक्षण के विरोधियों का कहना था कि अगर संरक्षण दिया गया तो सदन का उपयोग मानहानिकारक ही नहीं राजद्रोहात्मक भाषणों के लिये भी किया जायेगा और अखबार ऐसे भाषणों को छापेंगे और कानूनी कार्यवाही से मुक्त रहेंगे। रही कार्यवाही के अधिकृत रिपोर्ट की बात तो उसके बारे में इन लोगों की दलील थी कि इसके छपने और वितरण में काफी समय लगता है और इस कारण उसमें किसी आपत्तिजनक भाषण के छपने से व्यापक प्रसार का उतना डर नहीं जितना समाचार पत्रों में प्रकाशन से। विरोधियों की बात मान ली गई और संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई जिससे सदन में दिया गया कोई आपत्तिजनक भाषण छापने के लिये समाचार पत्रों को वैसा ही संरक्षण मिले जैसा सदस्यों और कार्यवाही कि अधिकृत रिपोर्ट को प्राप्त था।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद नियुक्त **प्रेस कानून संबंधी समिति** का मत था कि विधायिका के सदस्यों को सदन में दिये गये भाषणों के लिये कानूनी कार्यवाही से जो छूट मिल है उसे समाचार पत्रों को भी देना ठीक नहीं होगा। इसके विपरीत **प्रथम प्रेस आयोग** का सुझाव था कि अगर कोई समाचार पत्र संसद या विधानमंडल की कार्यवाही को ईमानदारी से समाचार देता है तो उसे मानहानि के फौजदारी अपराध के मुकदमे से संरक्षण देना चाहिये। पर इससे अधिक संरक्षण आयोग भी देना नहीं चाहता था। समाचार पत्रों के सामने दो तरह के समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। पहला ये कि यदि सदन में दिये गये किसी भाषण का समाचार न दे तो वह अपने कर्त्तव्यों से भागने का डर तथा दूसरी ओर छापें तो यह डर था कि इसके उपर दीवानी और फौजदारी अदालतों में मानहानि का मुकदमा चलाया जा सकता है। **कलकत्ता उच्च न्यायालय** ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि कोई समाचार पत्रा फौजदारी अदालत में मानहानि के अपराध से इस कारण बरी नहीं हो सकता कि उसने केवल विधायिका की कार्यवाही की सही खबर दी थी।

1956 में पारित प्रेस अधिनियम में व्यवस्था की गई कि अगर रेडियो या समाचार पत्र संसद के किसी सदन की कार्यवाही की द्वेषरहित सही खबर जनहित में प्रसारित या प्रकाशित करें तो उसके विरूद्ध दीवानी या फौजदारी अदालत में इसके कारण मुकदमा नहीं चलाया जा सकेगा। पर यह छूद केवल संसद की कार्यवाही के बारें में थी। यह उन्हीं विधानमंडलों पर लागू था जिन्होंने इस संबंध में इस प्रकार का अपना कानून बनाया था। 1975 में देश में आन्तरिक आपात स्थिति की घोषणा के बाद यह अधिनियम निरसत कर दिया गया। अधिनियम को निरसन करने का कारण यह बताया गया कि संसद की कार्यवाही के समाचार देने में समाचार पत्रों को मानहानि संबंधी कानून से छूट देते समय यह आशा थी कि वे इस सुविधा का उपयोग जनता को शिक्षित करने के लिये करेंगे पर उन्होंने इस सुविधा का दुरूपयोग किया। परिणाम यह हुआ कि समाचार पत्रों में ऐसी बातें छपती रहीं जो कानून के विरूद्ध थीं और जो सदन में अध्यक्ष के स्पष्ट आदेश की अवहेलना कर कहीं गई थी, इससे पत्रकारिता का स्तर भी गिरने लगा था। सन् 1977 के लोकसभा चुनाव के बाद केन्द्र में सत्ता में आई जनता सरकार ने पुराने अधिनियम को पुनर्जीवित किया। इतना ही नहीं उसने अधिनियम द्वारा दी गई छूट की सीमा बढ़ा दी। फौजदारी और दीवानी अदालत में मानहानि के मुकदमें से छूट के अलावा संसद की कार्यवाही का अगर सही द्वेष रहित समाचार सार्वजनिक हित के लिये प्रकाशित किया जाये तो कानूनी कार्यवाही से संरक्षण दिया गया। 44 वें संविधान संशोधन में एक नई धारा 371 (क) शामिल करके इसके द्वारा विधान मंडलों की कार्यवाही के बारे में था। संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 105 (3) और 194 (3) में संशोधन करके मूल अनुच्छेदों को प्रतिस्थापित किया है किन्तु इस संशोधन के साथ कि अब भविष्य में संसदीय विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद के विशेषाधिकारों का हवाला नहीं दिया जाएगा। इसी कारण उर्युक्त अनुच्छेदों में ''अन्य मामले में वे होंगे जो ब्रिटिश संसद और उनके सदस्यों के इस संविधान के प्रवर्त्तन पर उपलब्ध थे'' की पदावली के स्थान पर ''वे होंगे जो उस सदन और उनके सदस्यों या समितियों के 44 वें संशोधन अधिनियम 1978 के तुरन्त पूर्व थे''। 44 वें संविधान संशोधन में अनुच्छेद 371 के पश्चात् एक नया अनुच्छेद 371–क जोड़ा गया है। यह अनुच्छेद संसद की कार्यवाहियों के प्रकाशन को संविधान का संरक्षण प्रदान करता है। कोई भी व्यक्ति जो संसद या राज्य विधान मण्डल की कार्यवाहियों की सही रिपोर्ट प्रकाशित करता है उसके विरूद्ध किसी सिविल या आपराधिक न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं चलाई जा सकती है जब तक कि यह न सिद्ध हो जाए कि प्रकाशन दुर्भावना से किया गया है। यह विमुक्ति बेतार यन्त्रों से किये गये प्रकाशनों को भी प्राप्त होगी। किन्तु यह विमुक्ति सदन की गोपनीय कार्यवाहियों को प्राप्त नहीं होगी। अभी तक इस विमुक्ति का विनियमन संसदीय विशेषाधिकार प्रकाशन संरक्षण अधिनियम 1956 के अधीन किया जाता था, अब संविधान में समाविष्ट करके इस विमुक्ति को काफी सुदृढ़

बना दिया गया है। उक्त विमुक्ति राज्य विधानमंडलों के संबंध में भी लागू होगी। उक्त अधिनियम केवल संसद की कार्यवाहियों के सम्बन्ध में लागू होता था।

उपसंहारः– शोधकर्ता के मतानुसार संसद और विधानमंडलों के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते है और चाहते है कि उन्हें अपना काम निर्बाध और स्वतंत्र रूप से करने का अवसर मिले। यही उनके विशेषाधिकार का मूल है। सदन में किसी बात को तोड़–मरोड़कर पेश करना, विद्वेष लांछन लगाना और मजाक उड़ाना उनकी गरिमा के विरूद्ध है। साधारणतः जनप्रतिनिधि और प्रेस के संबंध मधुर होनी चाहिए जबकि सांसदों और विधायकों को प्रेस से शिकायत होती है और टकराव की स्थिति पैदा हो जाती है। अक्सर मामला सुलझ जाता है क्योंकि विधायिका भी प्रेस की कठिनाइयों को समझते है और प्रेस भी यह जानते है कि संसद और विधानमंडल भी सुचारू रूप से काम करते रहे नहीं तो कार्यपालिका निरंकुश हो जायेगी। साधारणतः यह देखा गया है कि अगर मामला केवल कार्यवाही की सही खबर न देने का होता है तो सामाचार पत्र गलती स्वीकार कर खेद प्रकट करते है, उनकी क्षमायाचना स्वीकार कर बात समाप्त कर दी जाती है, 98 फीसदी विशेषाधिकार हनन का मामला क्षमायाचना के बाद समाप्त हो जाती है। पर अगर बात ऐसी टिप्पणी की है जिससे सदन के अधिष्ठाता या सदस्य की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है या सदन कंलकित होता है तो इसे विशेषाधिकार का उल्लंघन ही नहीं सदन का अपमान समझा जाता है। विशेषाधिकार के उल्लंघन के मामलों में निर्णायक मुद्दा उद्देश्य का होता है। विधि में उद्देश्य का बड़ा महत्व है और उद्देश्य तथ्य पर निर्भर होता है। यदि समाचार पत्र विचारों की अभिव्यक्ति के मूलभूत अधिकार की आड़ लेकर विशेषाधिकार हनन का कृत्य करता है तो स्वाभाविक है कि संसद एवं विधानमंडल अपने विशेषाधिकारों को सर्वप्रथम महत्व देंगे। दोनों एक दूसरे के महत्व को समझते है इसलिए संविधान के अनुच्छेद 19(1) एवं अनुच्छेद 105 को वरियता न देकर अधिकतर मामल क्षमायाचना या संशोधन से मामला समाप्त हो जाते है। समाचार पत्र द्वारा विशेषाधिकार के बारे में अनिश्चितता दूर करने के लिए यह मांग कर रहे है कि विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध कर दिया जाए जबकि संसद यह मानती है कि संहिताबद्ध से सदन की गरिमा में कमी हो सकती है। न्यायालय और विचारशील व्यक्तियों ने भी स्वीकार कर ली है कि विशेषाधिकार की आड़ में किसी को भी उचित सुनवाई और अवसर दिये बगैर सजा नहीं दी जानी चाहिए।

संदर्भ

1.लोकसभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित पीठासीन अधिकारी सम्मेलन **2.** भारत का संविधान, जे.एन. पाण्डेय **3.** मध्यप्रदेश विधान सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित राज्य विधान मंडल, उसके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियॉ, प्रथम संस्करण। **4.** संसदीय पत्रिका, लोकसभा **5.** सुभाष कश्यप, भूतपूर्व महासचिव, लोक सभा के आलेख **6.** संसदीय पत्रिका, लोकसभा **7.** संसदीय और बजट रिपोर्टिंग, कैलाश नारायण गौड़ **8.** लोकसभा सत्र समीक्षा, मार्च 2010 **9.** प्रेस और भारतीय संसद, शांति स्वरूप सिंह **10.** विश्व के प्रमुख संविधान, डॉ. इकबाल नारायण **11.** विश्व के प्रमुख संविधान, डॉ. इकबाल नारायण **12.** प्रिविलेजेज डाइजेस्ट खण्ड पॉच, संख्या 2, 1961 **13.** प्रिविलेजेज डाइजेस्ट खण्ड तीन, संख्या 1, 1953